(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २)   सम्पादक-श्रीराम शर्मा आचार्य ।   एक अंक

वर्ष ६   मथुरा, १ सितम्बर सन् १९४५ ई०   अं

स्वार्थ को नहीं, परमार्थ को महत्व दीजिए ।

अपने दृष्टिकोण को सेवा धर्म से ओत प्रोत बनालेने से अन्तःकरण को असाधारण शा[ि]
प्राप्त होती है । जीवन में पग पग पर उल्लास बढ़ता जाता है । क्रूरता, कुटिलता, छल, पाखंड से
मानसिक उद्वेग उत्पन्न होता है वह जीवन को बड़ा ही अव्यवस्थित, अशान्त एवं कर्कश बना देता है
मानव जीवन में जो आध्यात्मिक अमृत छिपा हुआ है वह स्वार्थी लोगों को उपलब्ध नहीं हो सकत
जो व्यक्ति अपने ही सुख का ध्यान रखता है, अपनी ही चिन्ता करता है और दूसरों के स्वार्थों
परवाह नहीं करता वह विषम विपत्ति में फँस जाता है । सब लोग उससे घृणा करते हैं । कोई भी स
दिल से उसे प्यार नहीं करता । स्वार्थी मनुष्य कुछ सम्पदा इकट्ठी भले ही करले परन्तु वह असल
बहुत घाटे में रहता है, उसकी सारी मानसिक सुख शान्ति नष्ट भ्रष्ट हो जाती है ।

परमार्थ, सेवा, त्याग और निस्वार्थ प्रेम-व्यवहार को अपनी प्रमुख नीति बना लेने से अ
जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है । शत्रु भी उसमें घृणा नहीं करते । सेवा से संतुष्ट हुए अनेक ल
के आशीर्वाद, सद्भाव, शुभ संकल्प, देवताओं की भाँति पुष्प वृष्टि करते रहते हैं । अदृश्य लोक
अपने ऊपर अमृत वृष्टि होती हुई वह सेवा भावी मनुष्य अनुभव करता है । जीवन का अमर फल उसी
प्राप्त होता है जो स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को अधिक महत्व देता है ।

आत्मसंयम में स्वर्ग है।

आत्म-नियंत्रण ही स्वर्ग द्वार है। यह प्रकाश तथा शांति की ओर ले जाता है। उसके बिना मनुष्य नर्कवासी है – वह अशान्ति और अंधकार में विलीन है। आत्म संयमी न होने से मनुष्य अपने माथे पर घोर दुखों को मढ़ता है—उसके दुःख और सन्ताप उसे तब तक हैरान करते रहेंगे—जब तक वह आत्म नियंत्रण का कार्य आरम्भ नहीं कर देता। इसकी प्रतिस्पर्धा करने वाली कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इसकी स्थान पूर्ति कर सके। आत्म संयम आरम्भ करके कोई आदमी जो अपना उपकार कर सकता है—उससे अधिक करने वाली संसार की कोई शक्ति नहीं है।

आत्म नियंत्रण से मनुष्य अपने दैवी गुणों को प्रकाशित करके दैवीज्ञान तथा शान्ति का भागी होता है। उसका अभ्यास प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। निर्बल मनुष्य भी इसी समय से इसका अभ्यास आरम्भ कर सकता है। जब तक वह इस कार्य में प्रवृत्त नहीं होता, वह निर्बल बना रहेगा अथवा संभावना है कि उसकी निर्बलता बढ़ती जाय। जो आत्मा को अपने वश में नहीं करते, अपने हृदय को शुद्ध नहीं बनाते – ईश्वर के प्रति उनकी सब प्रार्थना व्यर्थ है। जो कलह मूलक अज्ञानता तथा कुवृत्तियों में लिपटे रहेंगे, उनका ईश्वर की सर्वज्ञता में विश्वास करना न करना बराबर है।

जो मनुष्य पर-दोष रत जिह्वा को ठीक नहीं करना चाहता, क्रुद्ध स्वभाव का दास बना रहना चाहता है और अपवित्र विचारों का उत्सर्ग नहीं कर सकता—उसे न तो कोई वाह्य शक्ति सन्मार्ग पर ला सकती है और न उसके किसी धार्मिक बात के समर्थन तथा विरोध ही से उसकी भलाई हो सकती है। मनुष्य अपने अन्तर्हित अंधकार पर विजय पाकर ही सत्य के प्रकाश का दर्शन पा सकता है।

खेद है कि मनुष्य आत्मसंयम के परम गौरव का अनुभव नहीं करता। वह इसकी निःसीम आवश्यकता को नहीं समझता और फलतः आध्यात्मिक स्वतंत्रता तथा वैभव, जिनकी तरफ यह मनुष्य को प्रेरित करती है मनुष्य की दृष्टि-पथ से छिपे रहते हैं। इसी कारण मनुष्य कुवासनाओं का दास बना रहता है। पृथ्वी मंडल पर फैले हुए बलात्कार, अपवित्रता, रोग तथा दुःखों पर दृष्टि दौड़ाइये और देखिये कि कहाँ तक आत्मसंयम की कमी इन सब का कारण है। तब आप इसका पूर्ण अनुभव करेंगे कि आत्म नियंत्रण की कितनी अधिक आवश्यकता है।

मैं इस बात को दोहराना चाहता हूं कि आत्म संयम ही स्वर्ग द्वार है इसके बिना आनन्द प्रेम या शांति, इनमें से किसी की न तो प्राप्ति हो सकती है और न कोई स्थायी रूप से टिक सकता है।

आत्म संयम पुण्य की प्रथम सीढ़ी है। इससे प्रत्येक सद्गुणों की प्राप्ति होती है। सुव्यवस्थित तथा सच्चे धार्मिक जीवन की यह सब प्रथम आवश्यकता है। इससे प्रसन्नता, सुख, तथा शान्ति मिलती है। ईश्वर विषयक विश्वास आवश्यक होते हुए भी, संयमके बिना सच्चे स्वर्ग की स्थापना नहीं हो सकती। क्योंकि प्रकाशित आचरण का ही दूसरा नाम धर्म है।

जैसे कि पानी की बूँद केले के पत्ते पर न जाने हवा के द्वारा थोड़ी ही देर ठहरे अथवा हवा न लगने से अधिक देर भी ठहर सकती है। उसी प्रकार यह जीवन भी अधिक देर ठहर सकता है और जल्द भी नष्ट हो सकता है।

× × ×

मथुरा १ सितम्बर, सन् १९४५ ई०

पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना।

ईश्वर प्रार्थना से सकाम कामना की सिद्धि होती है या नहीं? यह प्रश्न साधकों के मन को सदा ही उद्विग्न किया करता है। कारण यह है कि दोनों ही प्रकार के प्रमाण सामने आते रहते हैं। कभी कभी स्वल्प प्रार्थना करने वालों की ही कामनाऐं आश्चर्य जनक ढंग से अनायास पूरी होजाती है। और कभी कभी दीर्घ काल तक सुनिश्चित ढंग से उपासना आराधना करने पर भी अभीष्ट वस्तु प्राप्त नहीं होती। इन असमानताओं को देखकर कोई ईश्वर को, कोई साधना विधि को, कोई साधक को, कोई भाग्य को, और कोई किसी को दोष देते हैं। जिन्हें सुगमता पूर्वक अधिक समृद्धि मिल गई वे अतिशय विश्वासी होजाते हैं और जिन्हें कठिन प्रयत्न करने पर भी निराश रहना पड़ा वे अविश्वासी होजाते हैं।

उपरोक्त अस्थिरता को व्यवस्थित करने के लिए प्रार्थना का ईश्वर पर क्या प्रभाव पड़ता है और उस प्रभाव के द्वारा किस प्रकार सफलता मिलती है इस तथ्य को विधिवत् जानने का हमें प्रयत्न करना होगा। तभी इन विकल्पों का कारण ठीक प्रकार समझ में आवेगा।

हमें यह मानकर चलना चाहिए कि समस्त विश्व को नियम और नियंत्रण में कसकर सुस्थिर गति से चलाने वाली ईश्वरीय सत्ता स्वयं अनियमित या अव्यवस्थित नहीं है। सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य नियमबद्ध रूप से चलाने वाला परमात्मा स्वयं भी नियम रूप है। उसके समस्त कार्य निश्चित प्रणाणी के अनुसार होते हैं। उसकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता इस बात के ऊपर निर्भर नहीं है कि कोई व्यक्ति उसकी स्तुति करता है या निन्दा। अग्नि की निन्दा या स्तुति करने से उसकी कृपा या अकृपा प्राप्त नहीं होती वरन् उसके सदुपयोग या दुरुपयोग से प्राप्त होती है। अग्नि का यदि सदुपयोग किया जाय उसके नियमों के अनुसार काम किया जाय तो बड़ी बड़ी मशीनें चल सकती है स्वादिष्ट भोजन पक सकते हैं, शीतका निवारण हो सकता है, तथा और भी अनेकों काम हो सकते हैं। पर यदि उसे अनियमति ढंग से काम में लाया जाय तो हाथ झुलस सकते हैं, घर जल सकता है, भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित हो सकता है। अग्नि की कृपा अकृपा निन्दा स्तुति के ऊपर निर्भर नहीं वरन् उसके सदुपयोग दुरुपयोग पर निर्भर है। इसी प्रकार निष्पक्ष, न्यायकारी, समदर्शी, नियन्ता, नियम रूप परमात्मा इस पर ध्यान नहीं देता कि कौन व्यक्ति उसके गुण गाता है या कौन अवगुण बखानता है। उसे तो वह प्रिय है जो उसके नियम पर चलता है। उद्योगी पुरुष सिंहों को लक्ष्मी मिलती है। यह ईश्वरीय सीधा साधा नियम है। परमात्मा को प्रसन्न करने की सर्व प्रथम प्रक्रिया—पूजा विधि—यह है कि जिस वस्तु की प्राप्त करने के लिए जिन साधनों परिस्थितियों और योग्यताओं की आवश्यकता है उन्हें संग्रह किया जाय। उद्योग, प्रयत्न, विवेक एवं नियत व्यवस्था के अनुसार कार्य

करना परमात्मा को सबसे अधिक पसंद है। इस पद्धति से जो प्रभु को प्रसन्न करते हैं उनकी सकाम प्रार्थना बहुत शीघ्र स्वीकार करली जाती है और फलवती होती है।

जप, पूजन, अर्चन, पाठ, हवन, अनुष्ठान, यह एक प्रकार के आध्यात्मिक व्यायाम हैं। इनसे मनोबल सुदृढ़ होता है। जैसे शारीरिक व्यायाम से देह के अंग प्रत्यंग पुष्ट होकर निरोगता, सौन्दर्य, परिश्रम की क्षमता, उपार्जन, उत्पादन आदि की समृद्धियाँ मिलती है उसी प्रकार मनोबल की बढ़ोतरी से चित्त का सुव्यवस्था मन की एकाग्रता, बुद्धि की तीक्ष्णता, विवेक की जागृति में असाधारण उन्नति होती है। इन उन्नतियों के द्वारा कठिन, पेचीदा और दुरूह कार्यों को सरलता पूर्वक सम्पन्न कर लिया जाता है। पूजा अनुष्ठान की कर्मकाण्ड मयी क्रियाओं का मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुसार अन्तर्मन के ऊपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। सफलता में अपेक्षा कृत अधिक विश्वास हो जाता है, देवी कृपा का सहारा मिलने की आशा से पीठ बहुत भारी हो जाती है। साहस, आशा, उत्साह, एवं सफलता के विचार मनोलोक में घनीभूत होकर उमड़ने लगते हैं। ऐसी मनोभूमि सफलता के लिए बहुत ही उर्वर क्षेत्र है। ऐसी मनोदशा वाले व्यक्ति अपनी उत्तम स्थिति के कारण मोर्चे पर मोर्चा फतह करते जाते हैं।

जप तप द्वारा सात्विकता की वृद्धि होती है। सद्गुणों का आविर्भाव होता है। सत्प्रवृत्तियां जगती हैं। स्वभाव में नम्रता, भलमनसाहत, मधुरता, शिष्टता, स्थिरता महानता छलकने लगती जिसका निकटवर्ती वातावरण पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। जो लोग सम्पर्क में आते हैं वे प्रभावित होते हैं और सहायता एवं सहानुभूति का हाथ बढ़ाते हैं। समाज की जरा सी सहानुभूति से बड़े बड़े दुस्तर कार्य सुगम हो जाते हैं। यह सुगमतायें और सफलताऐं कभी कभी ऐसे अनूठे ढंग से सामने आजाती हैं कि उन्हें ईश्वरीय कृपा का फल ही कहा जाता है।

सकाम आराधना से अपनी इच्छित वस्तु के प्रति उत्कृष्ट अभिलाषा और उसकी प्राप्ति की अधिक निश्चय पूर्ण आशा जागृत होती है। यह जागरण इष्ट सिद्धि का द्वार है। जहां तीव्र चाह होती है वहां राह निकल आती है। रामायण का मत है "जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।" गीता ने भी 'अनन्यश्चिन्तयन्तो मां येजना पर्युपासते" श्लोक में इसी भाव की पुष्टि की है। निर्बल इच्छा से नहीं वरन् उत्कट अभिलाषा से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। यह स्थिति सकाम आराधना से प्राप्त होती है और तीव्र इच्छा के आकर्षण से अनुकूल परिस्थितियां एकत्रित होकर सफलता को निकट खींच लाती हैं।

इस प्रकार पूजा आराधना द्वारा इष्ट सिद्धि के प्राप्त होने में सहायता मिलती है। प्रार्थना ऐसी होनी चाहिए जिससे उत्कट अभिलाषा, दृढ़ता, सफलता की आशा, प्रयत्न शीलता, अभीष्ट योग्यता, विवेकशीलता एवं सात्विकता की जागृति हो। ऐसी प्रार्थना बड़ी बल शालिनी होती है, उससे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं जिनमें कठिन दिखाई देने वाले कार्य बड़ी सुगमता से पूरे होते हुए देखे जाते हैं। उसे प्रार्थना का चमत्कार भी कह सकते हैं।

किन्तु जो प्रार्थना, प्रयत्न रहित हो, मन के मोदक बांधने और बिना परिश्रम मुफ्त के माल की तरह एक झटके में सब कुछ मिल जाने की कल्पना हो, तो ऐसे खयाली पुलाव पूरे नहीं होते। ऐसी प्रार्थनाऐं प्रायः निष्फल चली जाती हैं। ईश्वर किसी के गिड़गिड़ाने नाक रगड़ने या भीख मांगने की ओर ध्यान नहीं देता। वह स्वयं कर्म रत है। कर्म फल के अनुसार ही कुछ मिलने का उसके साम्राज्य में सुनिश्चित विधान है। संसार के बाजार में 'इस हाथ दे, उस हाथ ले" की नीति ही प्रचलित

है। अधिकारी और पात्रों को ही उपहार मिलते हैं। पुरुषार्थी पराक्रमी और जागरूक व्यक्ति जीतते हैं और सुख भोगते हैं। योरोपियन, स्त्री पुरुष और बालकों की शारीरिक मानसिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नत अवस्था हम नित्य अपनी आंखों प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं इसके विपरीत प्रयत्न और जागरूकता के अभाव में हममें से अधिकांश व्यक्ति दुखी एवं दुर्दशा मय परिस्थितियों में पड़े सिसकते रहते हैं। प्रयत्न, योग्यता और जागरूकता को बढ़ाने वाली प्रार्थना सफलता के वरदान उपस्थित करती हैं परन्तु मजूरी से अधिक मांगने के मनसुवे आमतौर से पूरे नहीं होते। परमात्मा भिखमंगों को नहीं परिश्रमी पुत्रों को प्यार करता है।

पूर्व संचित शुभ अशुभ कर्मों का उदय अस्त भी वर्तमान जीवन में सुख और दुख को उत्पन्न करता है। संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों के अनुसार कभी कभी कोई आकस्मिक सम्पत्ति या विपत्ति सामने आखड़ी होती है। उसकी संगति प्रार्थना के साथ न जोड़नी चाहिए। पानी पीते समय छत पर से ईंट गिरे और सिर फूट जाय तो पानी से और ईंट से संगति न जोड़नी चाहिए। यद्यपि पानी पीने और ईंट गिरने के कार्य साथ साथ ही हुए तो भी इनका आपस में कोई संबंध नहीं है। यह आकस्मिक संयोग है। इस प्रकार प्रार्थना पूजा अनुठान करते हुए भी कोई आकस्मिक विपत्ति आजाय तो उस सम्पत्ति पूजा और विपत्ति सम्पत्ति का आपस में संबंध न जोड़ना चाहिए।

स्मरण रखिए, ईश्वर प्रार्थना एक आध्यात्मिक व्यायाम है। आत्मिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हर व्यक्ति को नित्य नियम पूर्वक पूजा उपासना करनी चाहिए। सकाम उपासना का भी बहुत अच्छा प्रभाव होता है और मनोवल की वृद्धि द्वारा इच्छित कामनाऐं पूरी होने में आश्चर्य जनक सहायता मिलती है। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रयत्न और पुरुषार्थ ही सफलता के निर्माता है। भाग्य और प्रारब्ध भी कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं, वह भी पुराना पुरुषार्थ ही है। जो कुछ मिलता है पुरुषार्थ से मिलता है। प्रार्थना भी एक प्रकार का पुरुषार्थ ही है। परमात्मा उसी की मदद करता है जो अपनी सहायता आप करता है। भिक्षुकों का यहां भी अपमान है और परमात्मा के दरबार में भी। मजूरों को उनके परिश्रम के अनुसार यहां भी मिलता है और परमात्मा भी उन्हें देने के लिए नियम बद्ध है। हमारी प्रार्थनाऐं पुरुषार्थ का एक अंग होनी चाहिए। भिक्षा का अंग नहीं। प्रयत्न पूर्ण प्रार्थना निष्फल नहीं जातीं उनका लोक और परलोक में संतोष जनक परिणाम अवश्य ही उपलब्ध होता है।

———

संकल्प शक्ति से सफलता।

किसी काम में सफलता पाने के लिए सुयोग्यता की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी संकल्प शक्ति की है—कोरी काम करने की शक्ति से ही काम नहीं चलता किन्तु उत्साह पूर्वक लगातार मेहनत करने की इच्छा भी होनी चाहिये इच्छा करने की शक्ति मनुष्य के चरित्रवल का केन्द्र है, या यों कहिये वह मनुष्य का सर्वस्व है। इसी शक्ति से आदमी काम करने में लगा रहता है और उसको हरेक चेष्टा में जान सी आ जाती है। सच्ची आशा उसी पर निर्भर है—और जीवन को सर्वोक्त बनाने वाली चीज़ आशा ही है। निरुत्साही मनुष्य का दुनियां में कहीं भी ठिकाना नहीं। दिल को मजबूती के बराबर दूसरा सुख नहीं। चाहे मनुष्य का प्रयत्न निष्फल भी चला जाय, तो भी उसे इस बात से संतोष मिलेगा कि मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया। जो मनुष धीरज रखकर मुसीवतों को झेलता है, ईमानदारी पर आरूढ़ रहता है, और कठोर दुख में

पड़कर भी अपने उद्योग के बल पर खड़ा रहता है, उसे देखकर दीन मनुष्यों में भी उत्साह और हर्ष पैदा होता है।

परन्तु केवल इच्छा करते रहना युवकों के मस्तक को रोगी बना देता है, इच्छाओं को शीघ्र कार्यरूप में परिणत करना चाहिए। एक बार किसी अच्छे काम का इरादा करके उसे बिना हिचकिचाये हुए तुरन्त ही पूरा कर डालना चाहिए जीवन की अधिकांश परिस्थितियों में कष्ट और मेहनत को खुशी के साथ सह लेना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से अत्यंत उत्तम और उपयोगी शिक्षा मिलती है। जीवन में शरीर अथवा मस्तक की मेहनत के बिना कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। काम करने से कभी मुंह न मोड़ना चाहिये। उत्साहभंग होने से कुछ भी नहीं हो सकता।

उत्साह पूर्वक काम किये बिना कोई महत्व-पूर्ण काम नहीं हो सकता। मनुष्य की उन्नति मुख्य करके अपनी इच्छा से उद्योग करने और कठिनाओं का सामना करने से होती है और यह जानकर आश्चर्य होता है कि बहुधा वे बातें जो देखने में असंम्भव सी मालूम होती हैं ऐसा करने से संभव हो जाती हैं। तीव्र आशा स्वयं एक ऐसी चीज़ है कि वह संभव बातों को प्रत्यक्ष कर दिखाती है. हमारी इच्छायें प्रायः उन कामों की सूचक होती हैं जिनको हम कर सकते हैं। परन्तु कायर और डावांडोल मनुष्यों के साथ यह यह बात नहीं होती। वे हर एक काम को असंभव पाते हैं जिसका मुख्य कारण यही है कि वह काम उनको असंभव सा लगता है।

सम्पत्ति का अभिमान मत करो क्योंकि प्रकृति के एक ही झोंके में बड़ी से बड़ी सम्पत्ति क्षण भर में चकनाचूर हो सकती है।

× × ×

सादगी और सचाई।

सच्चे मनुष्य के वस्त्र साधारण होते हैं। वस्त्रों में वह बहुत कम व्यय करता है। उसके वस्त्र सस्ते और संख्या में भी कम होते हैं। किन्तु वह मैले और गंदे नहीं होते।

वस्त्र के विषय में अपनी रुचि को अत्यन्त सरल बनालो। अपने को बहुमूल्य वस्त्रों से सजाने वाले उन व्यर्थ के छैलाओं और रंगीलों के समान मत बनो, जो अपने धन का प्रदर्शन करना अथवा चालाकी से अपने मुख पर झूठा सौंदर्य लाना चाहते हैं। वास्तविक सौंदर्य को सजाने के लिये वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती केवल कुरूप स्त्री पुरुषों का ही यह विश्वास होता है कि उत्तम वस्त्रों में उनकी कुरूपता छिप जावेगी।

इस बात को स्मरण रखो कि बज़ाज और दर्जी आपके आकार में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं कर सकता आप कितने भी बढ़िया वस्त्र पहिन लो, जो कुछ हो वही रहोगे। सौंदर्य के विषय में यह है उत्तम स्वास्थ्य और शुद्ध आचरण पैरिस के अच्छे से अच्छे क्रीम और पाउडर से भी अधिक सौन्दर्य बढ़ाते हैं। गाजर के खाने से आपका रूप अन्य सभी श्रृङ्गार सामग्री की अपेक्षा अधिक सुन्दर हो जावेगा कि उत्तम से उत्तम वस्त्राभूषण तथा सुगंधि आदि से श्रृङ्गार करने वाली नवयुवतियों का भी इतना नहीं हो सकता। अतएव वस्त्रों में सरलता को ही पसन्द करो। बहुव्यय, कृत्रिमता, और अत्यन्त बनाव श्रृङ्गार को छोड़ दो, इससे बहुत शीघ्र घृणा और उपहास सहन करना पड़ता है।

पाप में किसी को आनन्द नहीं मिला और न दुर्भावनाओं के बीच किसी ने शान्ति प्राप्त की है।

× × ×

विचारशक्ति द्वारा समृद्धि प्राप्ति:—

(डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए० टी० लिट्)

यों तो संसार में अनेक निंद्य वस्तुएँ मनुष्य का पतन करती हैं किन्तु शायद दुनियाँ की सबसे निकृष्ट वस्तु है विचार दारिद्रय। विचार दारिद्रय् ने आज अनेक व्यक्तियों को दारिद्रय् की कठोर शृंखलाओं में जकड़ रक्खा है, उनमें कुत्सित संकीर्णता, सीमा-बंधन तथा संकुचितता की क्षुद्र वृत्तियां उत्पन्न कर दी हैं, मानव जीवन में एक विषम अंधकार फैला दिया है। विचार दारिद्रय् ने मानव-समाज का बड़ा अपकार किया है और मनुष्यों की आत्मा को संकुचित, पराधीन एवं दीन हीन बनाया है।

विचार की दरिद्रता—यह एक निश्चित, अकाट्य, निर्विवाद सत्य है कि विचार की दरिद्रता के कारण मनुष्य दरिद्री बनता है, अपने अन्तःकरण में न्यूनता, गरीबी, असमर्थता की वृद्धि करता है। दरिद्रता की दास वृत्ति बहुत कुछ मनुष्यों के विचारों का परिणाम स्वरूप है। हर्ष का विषय है कि धीरे धीरे मनुष्यों को विचार की अद्भुत शक्ति का ज्ञान होता जा रहा है और इस तथ्य पर पूर्ण विश्वास हो गया है कि मनुष्य को संकुचित, पराधीन, पंगु एवं निकृष्ट बनाने वाले उसके विचार ही हैं।

अनेक व्यक्ति इस बात का रोना रोया करते हैं कि "हाय, हमारे पास अमुक वस्तु नहीं हैं। हम स्वादिष्ट भोजन नहीं कर पाते। उत्तम वस्त्र नहीं पहिन पाते। हम वैसा उत्कृष्ट एवं शानशौकत का जीवन व्यतीत नहीं कर पाते जैसा समाज में अन्य उच्चश्रेणी के व्यक्ति कर रहे हैं।"

ऐसी भयपूर्ण एवं थोथी विचारधारा से कारण अनेक व्यक्ति वायुमंडल से दरिद्रता की लहरें (Waves) अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। लूला, लंगड़ा, नेत्र विहीन, बधिर व्यक्ति यदि दरिद्र रह जाय तो वह इतना तिरस्कार का पात्र नहीं जितना वह भाग्यहीन पुरुष जो अपने मिथ्या विचारों द्वारा संसार की दरिद्रता को खींचा करता है जो अपने हृदय पटल पर सभी स्थानों में दरिद्रता ही दरिद्रता के डरावने चित्र अंकित कर लेता है, उसके मुख मुद्रा पर दरिद्रता की कलुषित परछाहीं सदैव बनी रहती है। मैं जिस दरिद्रता का निर्देश कर रहा हूं वह मनुष्य की स्वयं उत्पन्न की हुई संकीर्णता है।

दरिद्रता के कीटाणु क्यों कर फैलते हैं?

दरिद्रता के अंकुर सर्व प्रथम मनुष्य के अन्तःकरण में उत्पन्न होते हैं और तत्पश्चात् इधर उधर विस्तीर्ण होते हैं। पहिले मनुष्य के विचार दरिद्री बनने प्रारंभ होते हैं। वह दरिद्रता के विचारों में रमण करना प्रारंभ करता है। अपने को भाग्यहीन, गिरा हुआ, दीन हीन मानकर दरिद्रता और भय के विचार जीवन प्रदेश में दृढ़ता से जमा देता है और उसके प्रभाव से एक ऐसा चुम्बक बन जाता है, जो गरीबी, लाचारी, क्षुद्रता को अधिकाधिक परिमाण में हमारी ओर आकर्षित करके लाता है। वह दरिद्र व्यक्तियों की गिरी हुई दशा की ओर आकर्षित होता है, उनके दुखड़े सुनने में दिलचस्पी लेने लगता है, क्रमशः उन्हीं जैसी टूटी फूटी विचार प्रणाली (System of thinking), उन्हीं जैसी दीन हीन परिस्थिति (conditions), उन्हीं जैसी लाचारी तथा असमर्थता की कुप्रवृत्ति से सानिध्य कर लेता है।

अंधकार, पतन, भिखमंगे, निकृष्ट विचार उसमें हीनत्व की दुर्भावना उत्पन्न कर देते हैं जिसका भूत सदैव उनके पीछे पड़ा रहता है। अन्तर की दरिद्रता फिर बाह्यांगों पर प्रकट होने लगती है। मुख पर क्षुद्रता, असमर्थता, संकीर्णता, के कुत्सित चिन्ह

प्रकट होने लगते हैं। फिर तो उसकी वस्त्र भूषा, रहन सहन, वार्तालाप सब ही में दरिद्रता के कीटाणु प्रवेश करने लगते हैं जो उसके निश्चय, संकल्प, श्रद्धा, तथा इच्छा की महान् शक्तियों एवं सामर्थ्यों का क्षय कर डालते हैं।

विचार–द्रारिद्र्य् से ग्रस्त व्यक्ति की विचार प्रणाली––विचार दारिद्र्य् से ग्रसित व्यक्ति यही सोचा करता है कि मेरे भाग्य में विधाता ने दारिद्र्य् ही लिखा है। मैं दरिद्र हूं तथा सदैव दरिद्र रहूंगा। मेरे लिए संसार के सुख, ऐश्वर्य, समृद्धि नहीं हैं। मैंने पूर्व जन्म में न जाने कौन ऐसे पाप किए हैं जिनके दंड स्वरूप भगवान् ने मुझे टूटा छप्पर दिया है। मैं दूसरों की आधीनता, कृपा, इंगित पर ही निर्भर रह सकता हूं।

इस प्रकार के संकीर्ण विचारों के कारण मनुष्य की शक्तियां पंगु होती हैं। उसे निकट भविष्य में अपनी दुर्गति होती हुई दृष्टिगोचर होती है। अन्तःकरण में कभी शान्त न होने वाला अन्तर्द्वन्द्व प्रारंभ हो जाता है। विचार दारिद्र्य् बढ़जाने पर मनुष्य भिखारी बन जाता है। वह अपनी शक्तियों के प्रति शंकित हो उठता है, उसका आत्म विश्वास उठ जाता है और वह असमर्थ बन जाता है।

हमारी गुरुतम त्रुटि––जगत्पिता परमात्मा ने सृष्टि में संकीर्णता, सीमाबंधन या दरिद्रता का स्थान नहीं रक्खा है। ये कुत्सित वस्तुएँ संसार में नहीं प्रत्युत हमारे अन्तर में घास फूँस की तरह उग आई हैं। अन्तःकरण में उत्पन्न होकर इन्होंने हमारे आत्मबल तथा गुप्त सामर्थ्य को भक्षण कर लिया है। यही कारण है कि अनेक व्यक्तियों में शरीर का परिवर्तन तो स्पष्ट दीखता है, किन्तु मन बुद्धि, अन्तःकरण एवं समृद्धि का विकास किंचित मात्र भी नहीं दिखाई देता।

इस जगत् में दुःख देने वाली एक ही सत्ता है और वह मनुष्य का कर्म है। विचार और कर्म में कोई भेद भाव नहीं है। विचार बीज है और कर्म उसी बीज से उत्पन्न वृक्ष। सुख दुःख उसी के कड़ुवे मीठे फल हैं। परम शोक का विषय है कि समृद्धि के भंडार इस जगत् में रहते हुए भी हम अपनी आत्मा को संकुचित कर डालते हैं, उसमें दुर्दैव के निरुत्साही विचार भर लेते हैं भयपूर्ण दरिद्रता व ग़रीबी के टूटे फूटे विचारों में लिप्त रहते हैं। जितना ही अधिक हम दरिद्र संस्कारों से चिपटते हैं, उतने ही अधिक दुःखी बनते हैं। यह हमारी सबसे बड़ी ग़लती है। विचार की यह परबशता ही हमें समृद्धि के भव्य मार्ग पर अग्रसर नहीं होने देती।

समृद्धिशाली जीवन प्राप्त करने के उपाय––

मन में जिस भावना या विचार का प्रवह संचार होता है, मस्तिष्क में उसी प्रकार के जीवा[illegible]णुओं की रचना होती है। आप चाहें कैसी भी निर्धन अवस्था में हों, मस्तिष्क में यह वि[illegible] मत आने दो कि दरिद्रता तुम्हें परास्त [illegible] सकती है।

यदि हम अपने जीवन के आदर्शों को नी[illegible] आने दें, मन के आन्तरिक प्रदेश में ग़रीबी के वि[illegible] प्रवेश न होने दें, "बुद्धि मंद है, भाग्य फिर गया ग़रीबी ही लिखी है" ऐसे विचारों को मस्तिष्क में संग्रह न होने दें तो निश्चय ही हमारा जीवन परिपूर्ण एवं ऐश्वर्यशाली बन जायगा।

सम्पत्ति के विचार सम्पत्ति को खींच कर हमारे पास लाते हैं, लक्ष्मी का ध्यान अर्थात् लक्ष्मी का विचार लक्ष्मी को आकर्षित करता है। अतएव यदि आप धन की आकांक्षा करते हैं तो आपको उन शक्तियों को आकर्षित करना पड़ेगा। जिनसे धनोपार्जन में आपकी सहायता हो। दूर दर्शिता, अग्रसोचन की शक्ति, सुबुद्धि, दृढ़ता, निश्चित ध्येय पर

ही व्यापार अवलम्बित है। आपके विचार समान विचारों और उसी प्रकार की वस्तुओं को आकर्षित करते हैं। यदि आप दरिद्रता के विचारों को अपने अन्तःकरण में रक्खेंगे, तो दरिद्रता आपकी ओर आकर्षित होकर आयेगी। इसके विपरीत यदि आप अपने मनमें संकल्प करें कि आप धनवान् होते जा रहे हैं तो यह विचार आपकी शक्तियों को धन खींचने में सहायता प्रदान करेगा। अतः धन चाहते हो तो उसके ऊपर चित्त को एकाग्र करो।

विचारों का स्वभाव—विचारों का स्वभाव है कि उनका अतिथि-सत्कार करो तो वे पुष्ट होते हैं, बढ़ते हैं, विकसित होकर नवजीवन निर्माण करते हैं। यदि उन्हें दुत्कार दो, या उनकी बेइज्जती करदो और उचित परवाह न करो, तो वे चले जाते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ऐसे विचारों की कब्रें मनमें पड़ी रहती हैं। अतः तुम जिन विचारों को अपना मित्र समझो, जिनसे अच्छी आदत बनती हों, उत्तम स्वभाव का निर्माण होता हो, उन्हीं का बार बार चिंतन करो। अतिथि-सत्कार करो। इन भव्य विचारों का तुम्हारे जीवन की प्रत्येक घटना पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। मनुष्य का जीवन घटनाओं का समूह है और ये घटनाएँ हमारे विचारों के परिणाम हैं। तुम्हारे अन्दर जो विचार शक्ति है, तुम चाहो तो उसके उचित उपयोग से देवता बन सकते हो और यदि चाहो तो पशु भी बन सकते हो। चाहो तो निर्धन हो सकते हो, चाहो तो धनवान हो सकते हो।

किसी पुरुष को भी ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिये। यदि कोई उस पर प्रहार करदे, तो ब्राह्मण को उससे द्वेष नहीं करना चाहिये। शर्म ऐसे पुरुष के लिये जो ब्राह्मण पर प्रहार करता है, उससे अधिक शर्म उस ब्राह्मण के लिये जो प्रहार करने वाले से द्वेष करता है। × ×

आलस्य से अवनति।

याद रक्खो कि आलसी मनुष्य के लिये किसी प्रकार की उत्कृष्टता प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। आत्मोत्सर्ग, मानसिक उन्नति एवं व्यवसाय में केवल उद्योगी मनुष्य ही सफलता प्राप्त कर सकता है। मनुष्य का जन्म चाहे धनाढ्य या प्रतिष्ठित घर में हो, परन्तु उसे यथार्थ कीर्ति केवल अटूट परिश्रम के द्वारा ही मिल सकती है। धनाढ्य मनुष्य रुपया देकर दूसरों से अपना काम करा सकता है, परन्तु वह दूसरों के द्वारा अपना विचार कार्य नहीं करा सकता और न वह किसी प्रकार की आत्मोन्नति हो खरीद सकता है।

इसलिये स्पष्ट है कि सर्वोत्तम उन्नति के लिये यह जरूरी नहीं है कि मनुष्य धनी हो अथवा उसके पास सब तरह के साधन मौजूद हों। यदि ऐसा होता तो संसार सब युगों में उन मनुष्यों का ऋणी न होता, जिन्होंने निम्न श्रेणी से उन्नति की है। जो मनुष्य आलस्य और ऐश आराम में अपने दिन बिताते हैं उनको उद्योग करने अथवा कठिनाइयों का सामना करने की आदत नहीं पड़ती और न उनको उस शक्ति का ज्ञान होता है जो जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए परम आवश्यक है। गरीबी को लोग मुसीबत समझते हैं, परन्तु वास्तव में बात यह है कि यदि मनुष्य दृढ़तापूर्वक अपने पैरों पर खड़ा रहे तो वह गरीबी उसके लिए आशीर्वाद हो सकती है। गरीबी मनुष्य को संसार के उस युद्ध के लिए तैयार करती है जिसमें यद्यपि कुछ लोग नीचता दिखाकर विलास प्रिय हो जाते हैं, परन्तु समझदार और सच्चे हृदय वाले मनुष्य बल और विश्वास पूर्वक लड़ते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं।

चरित्र को पवित्र रखो।

(श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक)

वह पुरुष धन्य है जिसका मनकलुषित विचारों से शून्य हो। जिसके हृदय में कभी बुरी वासना का प्रवेश नहीं होता, जिसकी वाणी शुद्ध और निर्मल भावों से सदा सनी रहती है।

सचमुच उस पुरुष की कीर्ति महान है जिसके ओठों से कभी अपवित्र शब्द न निकला हो, जिसकी मानसिक तरगें सदा दैवीय-ज्योति के समुद्र में लहर मारती रहें, जिसने स्वप्न में भी अश्लील भावना का विचार न किया हो।

आओ, संसार में उस मनुष्य या स्त्री की तलाश करो जो बुराई से बिल्कुल अनभिज्ञ है, जिसके वार्तालाप में पवित्रता का मधुर रस हो, जिसके चेहरे पर दुर्विकारों का एक भी चिन्ह न हो, जो सिर से पैर तक पवित्रता की मूर्ति हो। यदि ऐसा पुरुष या स्त्री मिल जाय तो उसके चरणों में सिर धर कर प्रणाम करो। ऐसी ही आत्माओं में ईश्वरीय शक्ति की विभूति है, उन्हीं के विमल प्रकाश से संसार प्रकाशित होता है।

पवित्रता, जीवनादर्श की प्राप्ति का सबसे श्रेष्ठ साधन है। वह मनुष्यत्व का सबसे बड़ा उच्च लक्षण है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के जीवन में यह एक खास बात थी कि वे सच्चरित्रता के उपासक थे। जिस किसी साधु या सन्यासी के जीवन में वे जरा भी अश्लीलता देखते, उससे वे सदा दूर रहते थे। उनमें अपवित्रता सहन करने की आदत न थी। इसी उच्च गुण के कारण वे अपने वीर्य्य की रक्षा कर सके और उन्होंने बाल ब्रह्मचारी की पुनीत पदवी प्राप्त की।

हमने बड़े बड़े दिग्गज विद्वानों को अश्लील मजाक करते देखा है। ऐसे लोगों पर उनकी विद्या ने कुछ भी प्रभाव नहीं डाला। वे उद्यान में रहने वाले उस माली की तरह हैं जो केवल पेट भरने के लिये वृक्षों और पोधों का लालन पालन करना जानता है।

सर आइजकन्यूटन अपने पवित्र जीवन के लिये प्रसिद्ध थे। उनके एक मित्रने एक बार उनके सामने गन्दी कहानी कह दी। बस वह उसकी मित्रता का अन्तिम दिन था। इसके बाद न्यूटन महोदय ने कभी उसे नहीं अपनाया।

पवित्रता की सुरभि अपने ढंग में न्यारी है। उसकी प्रशंसा करने की जरूरत नहीं, उसके लिये लम्बे लम्बे व्याख्यानों की आवश्यकता नहीं। पवित्रजीवन वाले पुरुष को आप कोठरियों के अंदर बन्द करके बिठाल दीजिये. उसके जीवन की मीठी मीठी सुगंधि आप ही आप उन दीवारों को भेद कर बाहर फैलने लगेगी और संसार उस सुरभि स्रोत के समीप स्वयं ही पहुंच जायगा।

कभी भी अश्लील, गन्दे, अपवित्र विचारों को अपने अंदर स्थान न देना चाहिये। वे विचार उस विषैले सांप की तरह हैं जो यमराज के दूत हैं। जिसके कान में वे पड़ जाते हैं, जहाँ उनका प्रवेश हो जाता है, वहीं तबाही आ जाती है। इसलिये सदा निरोग, शुद्ध. भावों को अपनाना उचित है।

दुर्व्यसनों की आग से बचने के लिये सर्वोत्तम मार्ग यह है कि मनुष्य का हृदय पवित्र हो। यदि हृदय में अश्लीलता भरी हुई है तो वाणी और कर्म से अश्लीलता दूर हो नहीं सकती। हम अन्दर की गंदगी को बाहर सुगंधित पदार्थों द्वारा छिपा नहीं सकते। बाहर से यदि कितनी ही लीपापोती कीजिये तो भी अन्दर की दुर्गंध फूट कर निकल ही आएगी। कभी न कभी, आप जब सावधान हो, जब आप अकेले में बैठे हुए हों और समझते हों कि वहां कोई आपको नहीं देखता हो रात को स्वप्न में—कभी न कभी वह पाप का भूत अपनी डरावनी सूरत दिखला ही देगा।

अपने जीवन के वही खाते को साफ रखो। जैसे आप अपने कपड़ों को दाग से बचाते हैं, जैसे आप अपनी सफेद पगड़ी पर धब्बा लगाने देना नहीं चाहते, जैसे आप अपने मुँह को साफ सुथरा रखने की चेष्टा रखते हैं. इससे कहीं ज्यादा यत्न अपने चरित्र को पवित्र रखने का कीजिये, आपका गौरव इसी में है कि आपका चरित्र निर्मल हो। आपकी ओर कोई अंगुली न उठा सके और यदि अंगुली उठे तो वह आपके शुद्ध चरित्र का पताका स्वरूप हो।

ऐसे लोगों से कभी मित्रता न करो जिनकी बातें कहते हुए आप अपनी माता भगिनी के सम्मुख लजावें। वह लज्जा आपके अंतरात्मा की आवाज़ है जो आपके उस दुराचारी साथी से दूर हटने का उपदेश देती है।

उस मनुष्य से मिलकर कितनी प्रसन्नता होती है जिसको आप अपने घर में निस्संकोच लेजा सकते हैं, जो यद्यपि विद्वान नहीं परन्तु शुद्ध चरित्र है, जिसके सुपुर्द आप अपना घर द्वार, बाल बच्चे आदि कर निश्चिंत घूम सकते हैं। ऐसे पुरुषों का समाज में कितना अभाव है।

हमें ऐसी पवित्रता नहीं चाहिये जो जंगलों में ही फूल फल सके, जिसके लिये भस्म रमाने की आवश्यकता हो। हमें उस पवित्रता की जरूरत है जो संसार की प्रलोभनों का सामना करे, जो समाज में अपने उत्तरदायित्व को समझे, जो मनुष्यत्व से रंगी हुई हो, जो संसार की बुराइयों को परास्त कर उन्नतोन्मुख होकर चले। ऐसी पवित्रता से ही जातियों का उत्थान हुआ करता है।

चरित्र की पवित्रता से बढ़ कर कोई खजाना नहीं है इससे बढ़कर कोई शक्ति नहीं है। निर्मल चरित्र वाला पुरुष जिस समय खड़ा होता है, पाप उस समय थर थर कांपने लगता है। पापी पुरुषों में जो शुद्ध निर्मल भावनायें सुषुप्ति अवस्था में होती हैं वे चैतन्य हो जाती हैं। उस समय एक अनुपम दृश्य देखने में आता है। पापी पुरुषों की वे निर्मल भावनाएें चैतन्य होकर सच्चरित्र पुरुष की पवित्रता का स्वागत करने के लिये खड़ी हो जाती हैं, उस समय पाप लज्जा के मारे गर्दन नीचे कर लेता है और पवित्रता की जय ध्वनि संसार में गूंजती है।

ब्राह्मण कौन है ?

(भगवान बुद्ध)

जो स्वतंत्र और निर्भय है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

जो मनुष्य ज्ञान, ध्यान में लगा रहता है, जो पाप से मुक्त है. जिसने अपना कर्तव्य पालन किया है और उत्तम गति को प्राप्त किया है। उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

कोई मनुष्य जटा धारण करने से, गोत्र से ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से, ब्राह्मण नहीं बन जाता। जिस मनुष्य में सत्य और धर्म पाये जाते हैं. वह पवित्र है. वह ब्राह्मण है।

जिस पुरुष ने संसार के बंधनों को तोड़ दिया है, जो सब चिन्ताओं से मुक्त है, जो सब सम्बधों से ऊपर हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

जो पुरुष निर्दोष है और धैर्य्य से निंदा, दुख और कैद को सहारता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं। जो पुरुष संतोष रखता है,सद्‌गुणों को अपनी सेना समझता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥

जिस पुरुष ने इस जीवन में ही दुखों का अंत देख लिया है, जिसने अपना बोझ उतार दिया है, जो राग से मुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

कुटुम्ब का उत्तर दायित्व।

(जोसेफ मेजिनी)

कुटुम्ब हृदय की जन्मभूमि है कुटुम्ब में एक देवता है, जो सहानुभूति, समवेदना, मधुरता और प्रेम का गुप्त प्रभाव अपने में रखता है। जिस देवता के प्रताप से हमें अपने कर्तव्य बहुत या भारी और अपने कष्ट तीक्ष्ण या कटु मालूम नहीं होते। मनुष्य को इस पृथ्वी पर जो सच्चा और अकृत्रिम, सौख्य और दुःख से असंयुक्त सुख प्राप्त हो सकता है, वह कुटुम्ब का सुख है।

कुटुम्ब की देवता यह स्त्री है, सम्बन्ध में वह चाहे माता हो, या पत्नी हो या भगिनी निस्सन्देह स्त्री जीवन का आधार है। यह प्रेम की वही मीठी चाशनी है, जो जीवन के इत्र में सींची गई है और उसको सुस्वादु बनाती है। या उस अमायिक प्रेम का, जो ईश्वरीय प्रेम कहलाता है, संसार में मूर्तिमान चित्र खींचा गया है। स्त्री जाति को परमात्मा ने उन स्निग्ध तत्वों से बनाया है, जिनमें चिन्ता की जल धारा और शोक का प्रलेप ठहर ही नहीं सकते। इसके अतिरिक्त स्त्री जाति के ही प्रताप से हम अपना भविष्य बनाते हैं। बालक प्रेम का पहला पाठ अपनी माता के चुम्बन से सीखता है।

कुटुम्ब की कल्पना मानुषी कल्पना नहीं है, किन्तु ईश्वरीय रचना है और कोई मानुषी शक्ति इसको मिटा नहीं सकती। जन्मभूमि के समान किन्तु इससे भी बढ़ कर कुटुम्ब हमारी सत्ता का एक मुख्य अंग है।

यदि तुम कुटुम्ब को स्वर्ग बनाना चाहते हो तो इसकी अधिष्ठात्री देवता स्त्री जाति का आदर करो और उनको गृहदेवी समझ कर पूजा करो। उनको केवल अपने बनावटी सुख और तुच्छ वासना पूर्ति का उपकरण न समझो, किन्तु वे एक ऐसी शक्ति हैं जो ईश्वर की सृष्टि को सुन्दर और मनोरम बनाने वाली और तुम्हारे मस्तिष्क वा हृदय को बल पहुँचाने वाली हैं। स्त्रियों पर विशेषता रखने का यदि कोई कुसंस्कार तुम्हारे मस्तिष्क में बनाया हुआ है, तो उसे निकाल दो, तुम्हें कोई विशेषता उन पर नहीं है।

हम पुरुष स्त्रियों के साथ बड़ा अनुचित और उद्दण्ड बर्ताव करते आये हैं और इस समय तक कर रहे हैं। हमें इस अपराध की छाया से भी दूर रहना चाहिये क्यों कि ईश्वर के समीप कोई अपराध इससे अधिक उग्र नहीं है, यह मानव जाति के एक कुटुम्ब को दो भागों में विभक्त करके एक भाग पर दूसरे की अधीनता स्वीकार करना है।

परम पिता ईश्वर की दृष्टि में स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं है, इन दोनों से केवल मनुष्य की सत्ता का परिचय मिलता है जिस प्रकार एक वृक्ष मूल से दो शाखायें पृथक् पृथक् फूटती हैं, इसी प्रकार एक मनुष्य जाति की जड़ से स्त्री और पुरुष की दो शाखाएँ उत्पन्न हुई हैं। किसी प्रकार की विषमता इनमें नहीं है। रुचि और काम में कुछ भेद है, सो यह पुरुषों में भी प्रायः देखा जाता है। क्या एक ही वाद्य के दो स्वर परस्पर विषम और भिन्न जातीय समझे जावेंगे? स्त्री और पुरुष भी दो स्वर हैं, जिनके बिना मनुष्य का राग पूरा नहीं होता।

स्त्री को केवल अपने सुख और दुःख का साथी न समझो, किन्तु अपने मानसिक भावों, हार्दिक अभिलाषाओं, अपने स्वाध्याय, गृहस्थ यज्ञ और अपने उस पुरुषार्थ में भी जो अपनी सामाजिक उन्नति के लिये तुम करते हो, उसको अपने बराबर का साथिनी और सहचरी समझो। उसको न केवल गार्हस्थ जीवन वा सामाजिक जीवन में किंतु जातीय जीवन में भी अपनी सदा सहचरी और विश्वस्त मंत्रिणी समझो। तुम दोनों मनुष्य रूप पक्षी के दो पर बन जाओ, जिनके द्वारा आत्मा उस निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सके, जो हमारा भाग्य या प्रारब्ध कहा जाता है।

ईश्वर ने जो संतान तुमको दी हैं, उनसे प्यार करो, पर वह तुम्हारा प्रेम सच्चा और गहरा होना चाहिये। वह अनुचित लाड़ या झूंठा स्नेह न हो जो तुम्हारी स्वार्थपरता और मूर्खता से उत्पन्न होता है और उनके जीवन को नष्ट करता है। तुम कभी इस बात को न भूलो कि तुम्हारे इन वर्तमान सन्तानों के रूप में आनेवाली प्रजायें तुम्हारी अधीनता में हैं, इसलिये इनके प्रति अपने उस कर्तव्य का जो ईश्वर ने तुमको सौंपा है और जिसके तुम सबसे अधिक उत्तरदाता हो, पालन करो। तुम अपनी सन्तानों को केवल जीवन के सुख और इच्छा पूर्ति की शिक्षा न दो किन्तु उनको धार्मिक जीवन, सदाचार और कर्तव्य पालन की भी शिक्षा दो, इस स्वार्थमय समय में ऐसे माता पिता विशेषता धनवानों में विरले ही मिलेंगे, जो संतान की शिक्षा के भार को, जो उनके ऊपर है, ठीक ठीक परिमाण में तौल सकें।

तुम जैसे हो वैसी ही तुम्हारी सन्तानें भी होंगी, वे उतनी ही अच्छी या बुरी होंगी, जितने तुम स्वयं अच्छे या बुरे हो। जब कि तुम आप अपने भाइयों के प्रति दयालु और उदार नहीं हो, तो उनसे क्या आशा कर सकते हो कि वे उनके प्रति दया और उदारता दिखलायेंगे। वे किस प्रकार अपनी विषय वासना और बुरी इच्छाओं को रोक सकेंगे, जबकि रात दिन तुमको विषयलोलुप और कामुक देखते हैं। वे किस प्रकार अपनी नैसर्गिक पवित्रता को स्थिर रख सकेंगे, जब कि तुम अपने अश्लील और निर्लज्ज व्यवहारों से उनकी लज्जा को तोड़ने में संकोच नहीं करते। तुम कठोर सांचे हो जिनमें उनकी मुलायम प्रकृति ढाली जाती है। निदान यह तुम्हीं पर निर्भर है कि तुम्हारी संतान मनुष्य हों या मनुष्याकृत वाले पशु।

अपने माता पिता की भक्ति करो और उनका यथा योग्य सम्मान करो। ऐसा कभी न हो कि तुम अपने बाल बच्चों के मोह में पड़ कर उन्हें भुला दो, जिनसे तुम उत्पन्न हुये हो। प्रायः नया सम्बन्ध पुराने सम्बंध को निर्बल कर देता है। होना तो यह चाहिये था कि यह सम्बन्ध उस प्रेम को जंजीर की एक और कड़ी बन जाता, जो कुटुम्ब की तीन पीढ़ियों को मिलाकर एक करती है। अपने माता पिता के श्वेत केशों का उनके अंतिम दिन तक आदर करो और उनके साथ सदा विनय और अधीनता का वर्ताव रखो। याद रक्खो जो सम्मान तुम अपने माता पिता का करते हो, वही तुमको अपनी संतान से आदर पाने का अधिकारी बनाता है।

माता, पिता, बहिनें, भाई, पत्नी, और बच्चे ये सब तुम्हारे समीप उन शाखाओं के समान हैं जो एक ही जड़ से उत्तपन्न होती हैं। कुटुम्ब में प्रेम की वेदी स्थापन करो और उसको ऐसा मन्दिर बनाओ, जिसमें तुम जाति या देश के लिये अपनी भेंट चढ़ाने को एकत्रित हो।

कठोर समय में भी तुम्हारा मन प्रसन्न और आत्मा बल युक्त होगा, जो प्रत्येक परीक्षा में तुम्हें सहारा देगा और अन्धेरी से अन्धेरी विपत्ति में तुम्हारे आत्माओं को ईश्वरी प्रकाश की एक झलक दिखला कर ढाढस देगा।

———

जो मनुष्य द्वेष करने वालों के साथ द्वेष नहीं करता, जो डंडे का प्रयोग करने वालों के मध्य में भी शांत रहता है, जो विषयों में फंसे हुए लोगों के मध्य में भी स्वतंत्र है, वही ब्राह्मण है।

× × ×

जिस घर में अन्न इकट्ठा रहता है। मूर्खों का निरादर होता है। पति, पत्नी में प्रेम होता है उस मकान में निश्चय ही लक्ष्मी वास करती है।

× × ×

नम्रता कठोरता को निशस्त्र कर देती है। अधर्मी को पिघल देती है।

× × ×

त्राटक-योग का साधन।

(संकीर्तन)

— —

एक प्रकट लक्ष्य रख लेना चाहिये। वह कोई भगवान की मूर्ति हो या मोमबत्ती का प्रकाश। कड़ुआ या किसी बनस्पति के तेल अथवा घी के दीपक को रख सकते हैं। मिट्टी के तेल के प्रकाश अथवा बिजली बत्ती को काम में नहीं लाना चाहिये। नेत्र दृष्टि को हानि पहुँचेगी। सूर्य भी हानिकारक हैं और चन्द्रमा नित्य निश्चित समय पर प्राप्त नहीं होते। अतः उपरोक्त वस्तुयें ही ठीक हैं। शालिग्राम की पिण्डी, शिवलिंग या चित्रपट सबसे अच्छे हैं।

अपने कमरे में मूर्ति या प्रकाश को इतने ऊंचे पर रखो कि सामने बैठने पर वह ठीक नेत्रों के बराबर पड़े। रखने का स्थान ऐसा होना चाहिये जिसमें मूर्ति अंधेरे में न पड़े या प्रकाश वायु से हिले नहीं। मूर्ति रखना हो तो खिड़की के सामने दूसरी ओर और प्रकाश रखना हो तो किसी कौने में रखना ठीक रहता है। कमरा सर्वथा एकान्त हो उसमें धूलि, धुआं या बहुत सा सामान न भरा हो। स्वच्छ और रिक्त स्थान चाहिये। साधन के स्थान में एक लोटा जल पहले से रखलो। ठीक निश्चित समय पर साधन पर बैठ जाओ। साधन का समय बढ़ाया जा सकता है, परन्तु इतना ही बढ़ाना चाहिये जिसे कभी घटाना न पड़े।

आवश्यक है कि यह साधन निरोग नेत्रों वाला व्यक्ति ही करे। निर्बल नेत्रों वाले भी कर सकते हैं, किन्तु जिनके नेत्रों में दुर्बलता के अतिरिक्त कोई और भी रोग है, वे नहीं कर सकते। साधन से उठते ही मुख में जितना जल भर सके भर लो। मुख के जल को मुख में हिलाते हुये नेत्रों पर जल के छींटे दो। खुले नेत्रों में जल के छींटें लाभकारी होंगे। भली प्रकार नेत्र धोकर तब मुख का पानी थूक दो। जल्दी जल्दी पलकें मारते हुये दो मिनट टहलो। तदनन्तर कहीं नेत्र बन्द करके दो मिनट बैठे रहो। इस रीति से नेत्रों को पूरा आराम मिलेगा।

त्राटक की पद्धति से लययोग का जो साधन हम बताने जारहे हैं, उससे नेत्रों को कोई हानि पहुँचेगी, इसकी तनिक भी शंका नहीं करनी चाहिये। उपरोक्त विधि से नेत्रों को यदि साधन के अन्त में धोया जाता रहा तो नेत्रों की ज्योति बढ़ जावेगी। नेत्र दौर्बल्य नष्ट हो जावेगा। नेत्र निर्मल होजावेंगे। यदि किसी प्राकृतिक कारण से, शरीर विकार से अथवा नेत्र में कुछ पड़जाने से नेत्रों में पीड़ा होने लगे, नेत्र लाल होरहे हों. सूजे हों, उन पर फुन्सी हुई हो तो जब तक वह रोग दूर न होजाय, नेत्र स्वस्थ न होजावें, साधन को बन्द रखना चाहिये।

लक्ष्य से दो हाथ दूर आसन पर बैठो। लक्ष्य ठीक नेत्रों की सीध में रहे। शरीर सीधा रहे, कमर झुकी न रहे। एक टक लक्ष्य को देखो। नेत्रों पर जोर या दबाव नहीं डालना चाहिये। उन्हें अधिक फैलाना या संकुचित करना ठीक नहीं। साधारण रीति से वे जैसे खुले रहते हैं, वैसे ही खोले रखो। पलकें न गिरें, इसका ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा। धीरे धीरे साधन को बढ़ाना चाहिये। दो मिनट से प्रारम्भ करके एक मिनट नित्य बढ़ा सकते हैं। जब थक जावें, उनमें आंसू भर जावे तो साधन समाप्त करदो। दो सप्ताह तक साधन करने के पश्चात् जब नेत्रों में पहिली बार आंसू भर जावे तो पलकें मार कर आँखों को हाथ से पोंछ दो। फिर लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर करो। दूसरी बार आंसू भरने पर साधन तब समाप्त करो जब आंसू टपकने लगे। इसी प्रकार दो हफ्ते के अन्तर से दूसरी बार भी आंसू पोंछकर पुनः दृष्टि स्थिर कर सकते हो। किसी भी दशा में तीन बार से अधिक आंसू पोंछकर कभी भी दृष्टि जमाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। इससे नेत्रों को हानि पहुंचेगी।

यदि लक्ष्य चित्रपट हो तो आराध्य के चरणों

के एक अंगुष्ठ के नख पर दृष्टि जमाओ और यदि शिव लिङ्ग या शालिग्राम हों तो ऊपरी भाग पर। प्रदीप में उस स्थान पर दृष्टि स्थिर करनी चाहिये जहां बत्ती से ज्योति प्रारम्भ होती है। मनको सब ओर से हटाकर एकत्र करके लक्ष्य पर लगाओ। भावना करो कि मूर्ति से अपार प्रकाश निकल रहा है, अथवा दीपक तुम्हारी दृष्टि के आघात से बुझ जायगा। दीपक यदि बुझ जाय तो भी दृष्टि वैसे ही स्थिर करके भावना करो कि तुम्हारे नेत्रों की ज्योति पुनः दीपक को जला देगी।

जब दीपक पुनः जल जावे तो नेत्रों को बन्द कर लो और भावना के द्वारा दीपक को देखो। मानो तुम्हारी दृष्टि पलकों के आवरण को भेद कर दीपक को देख लेगी। सचमुच ही तुम दीपक को देखलोगे। तुम देखोगे कि दीपक का प्रकाश विस्तीर्ण हो रहा है। उस प्रकाश में ही तुम्हें सम्पूर्ण संसार और सभी देवताओं के दर्शन होंगे। कहीं मत रुको! चुपचाप देखते चलो। प्रकाश महत्तर होता जायगा। सब दृश्य उसी में लीन होने लगेंगे। तुम अपने में एक घबड़ाहट पाओगे। डरो मत, अपने को जागृत रखने का प्रयत्न मत करो! उस निर्विकल्प स्थिति में डूब जाओ। अपने को मिटादो।

यदि साधन मूर्ति पर किया गया है तो जब मूर्ति से भावना करते २ प्रकाश प्रकट होने लगे और इतना तीव्र हो जावे कि नेत्र उसे सहन न कर सकें तो नेत्रों को बन्द करलो। अपने भीतर, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य या सहस्रार में जहां सरलता हो, उसी मूर्ति का ध्यान करना चाहिये। मूर्ति स्थिर होते ही उसके उसी भाग पर मन एकाग्र करना होगा, जिस भाग पर बाहर दृष्टि स्थिर की थी। उसी भाग से प्रकाश के प्राकट्य की पुनः भावना करते रहना चाहिये।

उस लक्ष्य से प्रकाश प्रकट होगा। शरीर में इस समय कुछ जलन या पीड़ा हो सकती है। शरीर के किसी विशेष भाग में भी दर्द हो सकता है। बिना भीत एवं व्याकुल हुये स्थिर रहने से वह पीड़ा या जलन कुछ मिनट में ही मिट जायगी। प्रकाश तीव्रतम होता जायगा। दीपक की भांति उसमें भी समस्त विश्व का दर्शन होगा। यही विराट या विश्वरूपका दर्शन है। तदनन्तर निर्गुण निष्ठा के साधक के प्रसंग में दृश्य लीन हो जायंगे, केवल प्रकाश रहेगा और अन्त में साधक की त्रिपुटी उसी में लीन हो जायगी। साधक सगुणोपासक हुआ तो सब दृश्य आराध्य मूर्ति में लीन हो जायंगे और अंत में आराध्य की हँसी में साधक का स्व पार्थक्य भी।

कर्तव्य क्षेत्र में उतरो।

पृथ्वी, पापों का प्रायश्चित करने के लिये कुछ दिन विश्राम करने की जगह नहीं है। यह वह घर है, जिसमें रहकर हमें सत्य, न्याय और दया के उस अंकुर को परिपुष्ट करना चाहिये जिसका बीज प्रत्येक मनुष्य के हृदय क्षेत्र में बोया गया है। यह पूर्णता के उस शिखर पर पहुँचने की सीढ़ी है, जिसको हम तभी प्राप्त हो सकते हैं,जब कि अपने मन,वचन और कर्म से ईश्वर के प्रकाश को संसार में फैलावें और अपने आपको इस पवित्र काम के लिये समर्पित कर दें कि जहां तक हमारे सामर्थ्य में है, उसको इच्छा पूर्ण करेंगे। जिस समय हमारा न्याय होगा और हमको यह व्यवस्था दी जायगी कि हम या तो आगे बढ़ें या पीछे हटें उस समय केवल यही देखा जायगा कि हमने अपने भाइयों के साथ भलाई की है या बुराई, उनको अपने जीवन संग्राम में सहायता पहुंचाई है या हानि?

जितनी अधिक सहानुभूति और जितना अधिक निष्कपट प्रेम हम अपने सजातीय बान्धवों के साथ रक्खेंगे, उतनी ही अधिक हमारी शक्ति बढ़ेगी। हमें यह प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य जाति एक कुटुम्ब बन जावे, जिसका प्रत्येक अंग प्रज्वलित अणु के समान धार्मिक प्रकाश की किरण बनकर दूसरों के लिये उन पर चमके। इस प्रकार जातिगत पूर्णता पीढ़ी दर पीढ़ी अर्थात् युग युगान्तर में उन्नति करती जाती है।

डरो मत !

(श्री हरिभाऊजी उपाध्याय)

मनुष्य और भय दोनों परस्पर-विरोधी शब्द हैं। जो नर-नारायण का अंश है—नहीं, स्वयं नारायण ही है—उसके समीप भय कैसे रहता है ? भय का अस्तित्व तो अज्ञान में है । अरे अज्ञानी, अपने स्वरूप को पहिचान। देख- सूरज को देख, यह तेरे ही प्रकाश से चमक रहा है। आग की आंच तेरे ही चैतन्य का प्रतिबिम्ब है । चन्द्र तेरी ही शान्ति का प्रतिनिधि है अरे, तू प्रकृति का—चराचर का राजा है, राजा-गुलाम नहीं । दुनिया के बड़े बड़े बादशाह तेरे हाथ के खिलौने हैं। राम बादशाह की भाषा में तेरी शतरंज की मोहरे हैं। जिन शक्तियों से आज तू डरता है, जिन्हें तू भयंकर और भीषण समझता है, वे तेरी हुंकार के साथ लोप हो जायेंगे। तू अपने को पहचान तो। तू देखेगा सारे संसार में तू ही तू है। सब तेरा है—सबका तू है।

क्या तू इस रहस्य को जानना चाहता है ? मनुष्य की करामात, उसकी शक्तियों के अद्भुत चमत्कार को देखना चाहता है तो निर्भयता सीख। भयभूत की तरह हैं। भूत को जहाँ माना नहीं कि वह पीछे लगा नहीं। भय मनुष्य जाति का अपमान है। भय खाना और भय दिखाना दोनों मनुष्य धर्म के विपरीत हैं। दोनों कायरता के भिन्न भिन्न रूप हैं। जो दूसरों पर भय का प्रयोग करता है उन्हें डराता है वह खुद निर्भय नहीं हो सकता उसकी आत्मा कभी नहीं उठ सकती। भय दिखाना पशुता है। भय खाना पशु से भी नीचे गिरना है।

पर आश्चर्य तो यह है कि जिसका भय हमें रखना चाहिये उसका भय तो हम रखते नहीं, पर जिसका भय हमारे पतन का, नाश का बीज है उन्हें हमने अपना मित्र बना लिया है। मनुष्य-समाज में पाप का और ईश्वर का भय आज कितना है? दूसरे सैकड़ों भयों ने पाप और ईश्वर के भय को भगा दिया है और वहां अपना अड्डा जमा लिया है। मनुष्य, चेत ! तुझे आज चोरी करने का भय नहीं, भोले भालों को ठगने का, लूटने का डर नहीं, शराब बेचने और पीने का भय नहीं, अपनी बहनों के सतीत्व भंग करने का डर नहीं, गरीबों को सताने का भय नहीं, झूठ बोलने, प्रतिज्ञा, तोड़ने, धोका देने और बेईमानी करने का डर नहीं, अपने मतलब के लिये उन पर अत्याचार करने का डर नहीं, अरे क्या तुझे अपनी आत्मा के कल्याण का ख्याल नहीं ? क्या तुझे सचमुच आंखें नहीं ? परन्तु डरता है मिट्टी के पुतले से, लोहे के टुकड़े से, पत्थर की कंकड़ियों से, कमजोर और पापी आत्माओं से ! अरे, इनमें दम क्या है ? तू फूंक मार फूंक ? ये भूसी की तरह उड़ जांयगे । पर तू पहले अपने अज्ञान को छोड़ ! मनुष्यत्व को जान, उसका अभिमान रख। भय को घर में से निकाल दे । इससे तू अहिंसा के मर्म को समझेगा। तेरे हृदय में निर्मल और दिव्य प्रेम का प्रकाश होगा। संसार तुझे अपना मित्र मानेगा—तेरे चरण चूमेगा । अपनी पाशवी शक्तियों को मुझ पर न्योछावर कर देगा।

उद्योग करते रहो, संसार का सार उद्योग ही है। उद्योग से ही कीर्त्ति प्राप्त होती है।

× × ×

दूसरों की सेवा अपनी ही सेवा करना है । अपने आप को वश में करने से ही पूर्ण मनुष्यत्व मिलता है।

× × ×

जो मनुष्य जितेन्द्रिय, निर्विकार तथा अभिमान रहित है। उससे देवता भी ईर्ष्या करते हैं।

× × ×

धन की आसारता।

(लेखक—डाक्टर हीरालाल गुप्त, वेगू सराय)

अधिकांश लोगों का खयाल है कि जो धनी है वही सुखी है, निर्धन को तो भगवान ने व्यर्थ ही पैदा किया। वे तो संसार के भार स्वरूप ही हैं। कुछ अंशों में यह बात ठीक है कि धन से बहुत से शुभ कर्म हो सकते हैं। यज्ञ, दान, सदावर्त, धर्मशाला, गौशाला कुआ-तालाब आदि धन के बिना संभव नहीं। पर इसका दूसरा पहलू घोर अंधकार मय है। धन के कारण पिता-पुत्र, स्त्री-पति और भाई भाई में झगड़े हुआ करते हैं, यहां तक कि एक दूसरे की जान के ग्राहक तक हो जाते हैं। धन मित्र को मित्र से अलग कर देता है। धन के कारण चोर, लुटेरे और डाकुओं के आक्रमण होते हैं और धन के लोभ से ही धनिकों को विष का शिकार होना पड़ता है। अगर संक्षेप में कहा जाये तो धन का तीन चौथाई हिस्सा अंधेरे में और केवल एक चौथाई उजेले में है। अतएव अधिक धन जमा करना भी मूर्खता है।

कंचन में लिपट जाने पर भगवान दूर हो जाते हैं क्यों कि इसका लोभ और इसकी ममता बड़ी ही जबरदस्त होती है। बहुत लोग इसके इकट्ठा करने में बड़प्पन समझते हैं। पर वे यह नहीं समझते यह नहीं विचारते और यह नहीं सोचते कि यह धन जो विद्युत के समान चंचल है और पारे के समान लुढ़क जाने वाला है, उनके किस काम में आवेगा, अगर मरने के बाद साथ भी जाता तो एक बात थी। यह तो यहीं रह जाता है और मनुष्य हाथ पसारे यहां से कूच कर जाता है।

धन का गर्व भी कम नहीं होता है। बड़ा ही प्रवल रूप धारण करता है। पर भगवान गर्वहारी हैं। वह किसी के गर्व को रहने देना नहीं चाहते। माता की नाईं बच्चे के फोड़े में चीरा लगवा देना ही उचित समझते हैं। गज को जब तक अपने बल का गर्व था, उसकी सहायता नहीं की गई। रावण के गर्व का संहार कर दिया गया। कंस को अपने धन और बल के गर्व का कड़ुआ फल चखना पड़ा।

नामापराध मत करो।

शास्त्रों में कुछ ऐसे "नामापराध" बताये हैं जिनको करते रहने से नाम जप निष्फल हो जाता है। कोई आदमी सरकारी कानूनों को रोज रोज तोड़े और रोज जाकर कोतवाल साहब की प्रार्थना करे तो उस प्रार्थना को चापलूसी या धूर्तता कहकर तिरष्कृत कर दिया जायगा।

शास्त्र का कथन है—

सन्निन्दाऽसतिनाम वैभव कथा श्रीशेशयोर्भेदधीः।
अश्रद्धाश्रुतिशास्त्रदैशिकागिरांनाम्न्यर्थवाद भ्रमः॥
नामास्तीति निषिद्ध वृत्ति विहित त्यागोहि धर्मान्तरैः।
साम्यं नाम जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधादशः॥

अर्थ—सत्पुरुषों की निन्दा करना, अनिच्छुक व्यक्तियों को नाम महात्म्य और कथा कहना, शिव और विष्णु में भेद बुद्धि, वेदों की आज्ञा न मानना, शास्त्रों की आज्ञा न मानना, आप्त वचनों में अविश्वास, नाम महात्म्य को अर्थवाद मानना, नाम जपने का बहाना करके विहित धर्मकर्मों का त्याग, निषिद्ध कर्मों का आचरण और नाम जप की दूसरी बातों से तुलना करना यह दश नामापराध हैं।

जो इन नामापराधों को करता जाता है उसके नाम जपका कुछ महत्व नहीं। इसलिए सबसे पहले अपने चरित्र को शुद्ध किया जाय, आचरण को पवित्र बनाया जाय। जिसका आचरण शुद्ध है उसका थोड़ा सा नामोच्चार भी महानफल का दाता है। दुरात्माओं को दिनरात कीर्तन से भी परमात्मा प्रसन्न नहीं होता।

मातृत्व और यौवन।

(श्री विट्ठलदास मोदी, संचालक
आरोग्य मंदिर, गोरखपुर)

आज यह साधारण विश्वास हो रहा है कि बच्चा पैदा होने पर स्त्री का स्वास्थ्य खराब हो ही जाता है। कई लोग तो गर्भावस्थाको बुढ़ापे की प्रस्तावना समझते हैं और उनकी समझ से बच्चे वाली स्त्री अपने शारीरिक गठन को कदापि कायम नहीं रख सकती। ये विचार निराधार न होकर नित्य मिलने वाले प्रमाणों पर अवलंबित हैं। रोज दिखाई देता है कि आजकी स्वस्थ सबल युवती एक ही बच्चे की माता होने पर कल कुछ दूसरी ही हो जाती है। उसके कपोलों की लाली का स्थान पीलापन ले लेता है और ताजगी सुस्ती में बदल जाती है। और जब तक गर्भावती और जच्चा के बारे में प्रचलित नियमों का आधार खड़ा रहेगा इन खेद जनक एवं करुणोपोदक दृश्यों के बदले जाने की संभावना नहीं है।

जिन घरों में स्त्रियां सवेरे से शाम तक कुछ करती रहती हैं दशा कुछ अच्छी है। श्रम से ही जीवन है—यह नियम जितना साधारण जन के लिए उपयोगी है उससे कहीं अधिक गर्भावती के लिए। यदि केवल इस एक ही नियमका पालन किया जाय तो गर्भावस्था एवं प्रसव, समस्या न होकर एक साधारण प्रश्न भर रह जाय। गांवों में रहने वाली बहनों के जीवन पर दृष्टिपात किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी। शहर की स्त्रियों को उनका जीवन सादा एवं सरल होने पर भी उनका स्वास्थ्य उन्हें ईर्ष्याजनक प्रतीत होता है।

गर्भवती स्त्री को चाहिये कि वह उन सभी दैनिक कार्यों को करती रहे जो वह गर्भावस्था के पूर्व करती थी। यदि किसी को बहुत अधिक श्रम-साध्य कार्यों के करने की आदत रही हो तो अवश्य ही उसे उनके बदले हल्के काम चुनने चाहिए। पर सभी काम बंद करना तो बड़ी भारी ग़लती होगी।

क्या आपसे कभी दस-बारह बच्चों की माता को तीन चार बच्चों की माता और चार-पांच बच्चे वाली को कुमारी समझने की ग़लती नहीं हुई है? यदि ऐसे सुंदर स्वास्थ्यवाली स्त्री के स्वास्थ्य के रहस्य का पता लगावें तो एक ही बात मालूम होगी, यह है श्रम। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शरीर सशक्त एवं मांस पेशियां सुदृढ़ बनाई जांय तो प्रसव से कभी सौंदर्य संहारक न होगा। हमारा तो विश्वास है कि यदि समुचित ध्यान दिया जाय तो मातृत्व सौंदर्य रक्षा एवं सौंदर्य संवर्धन में सहायक हो सकता है। बच्चा होने के पहले और बादमें भी यदि ऐसा व्यायाम किया जाय जिससे अंग प्रत्यंग की कसरत हो जाय तो स्त्री का शरीर कभी ढीला और बेडौल न होगा, गठन खराब न होगा, वरन् उन बे बच्चे वाली गृहणियों से बहुत अच्छा होगा जो कसरत नहीं करतीं।

विदेशों में स्त्रियां गर्भावस्था में भी अपना दैनिक कार्य करती हैं। मिलमें काम करने वाली स्त्रियां कुछ ही हफ्ते के लिए अपना काम बंद करती हैं। वहां के स्वास्थ्य के विशेषज्ञ इस विषय पर विचार करते रहते हैं और उचित सलाह देते रहते हैं। हमारे यहां इसकी बड़ी कमी है। राष्ट्र के नव निर्माण की कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती जिसमें स्त्रियों को गर्भावस्था के पहले और बाद में स्वास्थ्य ठीक रखने के उचित विचारों के प्रचुर प्रचार को स्थान न हो।

× × ×

सब कामों में प्रारम्भ करने के पूर्व बुद्धिमानी से तैयारी करनी चाहिये।

अकमर्ण्य की खोज।

(राजकुमारी रत्नेश कुमारी 'ललन')

———

सहानुभूति का सहारा पाकर मेरी आहत भावनाएं उस अपरिचित सहृदय साधु के सन्मुख बिखरने को अकुला उठीं। मैं करुणकण्ठ हताश भाव से कहने लगा—महात्मन्! मैं बड़ा ही अभागा हूँ सारे संसार से मुझे उपेक्षा, निष्ठुरता, और तिरिष्कार ही प्राप्त हुआ है। मैंने अपने समस्त जीवन में अब तक के कड़ुए अनुभवों से यही सीखा है कि संसार स्वार्थी है। इष्ट मित्र अथवा आत्मीय जन कोई भी किसी का साथ नहीं देता।

एक दयामयी सरल मुस्कान के साथ उन्होंने कहा—"पहिली भूल"। जैसे बालकों को अज्ञान भरी बातों पर समझदार व्यक्ति कह उठते हैं। मैंने अकचका कर पूछा—मैं आपके कथन का तात्पर्य नहीं समझा! उन्होंने कहा-फिर बतलाऊंगा तुम अपनी दुःख गाथा पहिले कह लो। मैं कहने लगा—मेरा सिद्धान्त है—मलूकदास जी का यह कहाः—"अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम, दास मलूका कहि गये सबके दाता राम।" अस्तु सब से ठुकराये जाने पर मैंने सोचा, दुर्भाग्यवश मलूकदास तो मुझे मिल नहीं सकते हैं अतएव उनके जो आदर्श हैं उन्हीं के साथ रहूं और उनसे ही इस प्रकार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा लूं। पर मेरे दुर्भाग्य ने वहां भी पीछा न छोड़ा। मैंने देखा कोई पन्छी तो घोंसला बनाने में कड़ाके की धूप की भी पर्वाह न करते हुए व्यस्त है, कोई शिशुओं के लिये अपन आहार जुटा रहा है,कोई अपनी क्षुधा निवृत्ति में संलग्न है। कोई कोई डालियों पर झूल झूल कर गाते हुए भी मिले पर वे भी अपनी थकान मिटा नवीन स्फूर्ति पा फिर अपने कार्यों में दत्तचित्त होगये। अजगर को भी मैंने देखा पर वह भी प्राणशक्ति के द्वारा अपना आहार प्राप्त करताहै। कहने का तात्पर्य यह कि ये बड़े जीवों की तो बात ही क्या तितलियां, मधु मक्खियां, चींटियां, भवरों तक नन्हे प्राणियों को भी मैंने अकर्मण्य न पाया। थक कर निराश हतबुद्धि होकर मैं मूर्छित होगया फिर तो आपको विदित ही है। वे दयार्द्र पर सहज प्रसन्न भाव से कहने लगे—तुमने दो भूलें कीं। एक तो तुम्हें यह जानना चाहिये कि देना ही देना तो दैवी प्रकृति का धर्म है और लेना ही लेना दानवी प्रकृति का, तथा लेना भी और देना भी मानुषो प्रकृति का गुण है। यदि तुम देव बनोगे तो सब तुम्हारी पूजा करेंगे। (अपनी श्रद्धामयी भावनाओं से) यदि तुम मनुष्य बनोगे तो सब प्रेम और प्रशंसा तथा सन्मान करेंगे पर यदि तुम दानवी प्रकृति को अपनाओगे तो सर्वत्र तुमको निन्दा, उपेक्षा, घृणा और तिरस्कार ही प्राप्त होगा ये दोष तुम्हारा है जिसे तुम भ्रमवश संसार पर आरोपित कर रहे हो। यह तो हुई पहिली भूल।

दूसरा भूल तुमने जो की उसे तुम स्वयम् ही जान चुके हो कि पशु, पक्षी, कीट पतंग कोई भी सदैव निष्कर्म नहीं रहता अब तुम्हें तुम्हारी तीसरी भूल और बतानी है कि कोई इच्छा करने पर भी अकर्मण्य नहीं रह सकता, यह प्रकृति का अटल नियम है। अपना स्वभाव तथा संस्कार ही विवश करते हैं कर्म से योग करने को। सो कैसे? मैंने आश्चर्य की सीमा पर पहुंच कर पूंछा। वे हँसते हुए आत्मीयता पूर्ण घनिष्टता से कहने लगे—मानलो मैं तुम्हारे भोजन वस्त्र का भार अपने पर लेलूं तो तुम सोचना विचारना, देखना सुनना, हँसना, बोलना, चलना, फिरना मेरे अनुरोध पर छोड़ सकते हो? फिर सरल मुक्त हास्य के साथ—अरे भाई! जब शरीर की नाड़ी नाड़ी रक्त का बिन्दु २ तक गति शील है तब तुम कैसे निश्चेष्ट रहोगे विश्व का अणु गतियुक्त है फिर तुम कैसे बच सकोगे?

मैंने अपनी मूर्खता पर लज्जित होकर तक झुका लिया उन्होंने मेरी पीठ पर प्यार की की देते हुए कहा—जब कर्म किये बिना नहीं रहा सकता तब सत्कर्म करो न ? मैं श्रद्धा पूर्वक के चरणों पर झुक गया और गद् गद् स्वरूप बोला "जैसी आज्ञा" ऐसा प्रतीत हुआ सारा न मेरे इस सद् संकल्प पर प्रसन्नता प्रगट कर हा है।

फल के लिये प्रयत्न करो परन्तु दुविधा में खड़े रह जाओ। कोई भी कार्य ऐसा नहीं जिसे खोज और प्रयत्न से पूर्ण न कर सको।

× × ×

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताऐं प्त हुई हैं। अखंडज्योति इन महानुभावों के प्रति पनी कृतज्ञिता प्रगट करती है।

८) श्री० बालगोविन्द सी० पटेल अहमदाबाद।
) श्री द्वारिका महाराज, नेटाल (अफ्रीका)।
) श्रीमती सावित्री देवी जी उलाव
) मेघराज इन्द्रकुमार डागा, नवतारा।
) श्री हस्तीमल हरकचंद निजामाबाद।
) कुँ० भागेन्द्रपालसिंहजी रामापुर।
) श्री गुलफामसिंह जी काशीपुर।
मोहनलाल रघुनाथ जड़िया अमरावती।
बा० कुलवन्तसिंह खन्ना दहली।
श्री पूरनचंदजी ओमर, हटा।
श्री० अच्युत गणेश मुले कीर्तनकार. उन्द्री।
पुरुषोत्तमदास मिमानी, सिरसा।
पं० श्यामसुन्दर जी बडनगर।
पं० बाबूराम मिश्र, कानपुर।
श्री आत्मारामजी हैडमास्टर सिसरबाड़ा।

सब धर्मों की एकता।

(ले०—महात्मा जेम्स ऐलन)

शुद्ध हृदय तथा दोष रहित जीवन ही सत्य है। सिद्धान्तों तथा मत समूहों में सत्य नहीं। हृदय शुद्धि जीवन की पवित्रता, करुणा, प्रेम तथा पर-हितेच्छा के ऊपर ही सब धर्म दीक्षा देते हैं। वे सुकर्म करने का और पाप तथा स्वार्थपरता त्यागने का उपदेश देते हैं। ये बातें, सिद्धान्त ईश्वर शास्त्र तथा मतों से कुछ सम्बंध नहीं रखतीं। ये क्रियात्मक हैं, अभ्यास करने के लिये हैं और जीवन में व्यवहार के रूप में आचारणीय हैं। लोगों में इन बातों पर मतभेद नहीं होता क्यों कि वे तो प्रत्येक मत द्वारा प्रतिपादित सच्चाइयां हैं। तब आखिर मतभेद किस बात के लिये होता है। केवल मीमांसा तथा ईश्वर-शास्त्रों के विषय में ही।

सत्य और वास्तविकता सब देश और सब काल में अपने ही रूप में रहती है। पवित्र ईसाइ और पवित्र बौद्ध में कुछ भी अन्तर नहीं, दोनों में हृदय को शुद्धता, जीवन की पवित्रता, निर्द। आकांक्षायें और सत्य प्रेम पाये जाते हैं। बौद्ध धर्मावलम्बी के सुकर्म ईसाईसेभिन्ननहीं। पाप के लिये प्रायश्चित दुर्विचार तथा दुष्कर्म के लिये चिन्ता केवल ईसाइयों के हृदय में ही नहीं वरन सब धर्मा-वलम्बियों के हृदय में उत्पन्न होती है। सहृदयता की बड़ी आवश्यकता है। प्रेम अनिवार्य है। एक ही प्रकार के मौलिक सिद्धान्तों के कारण सब धर्म एक हों किन्तु मनुष्य इन सत्यों में रत नहीं होता। वह उन वस्तुओं के मतों तथा मीमांसाओं में उल-झता है—जो अनुभव तथा ज्ञान की सीमा के परे हैं, जो केवल अपने मत-विशेष की इच्छा तथा प्रचार में ही फूटते हैं और परस्पर मुठभेड़ करते हैं।

——

अन्तःकरण को कुचलिए मत !

जिस प्रकार हम दूसरे के दांतों से नहीं खाते अथवा दूसरे के कानों से नहीं सुनते उसी प्रकार दूसरे के अन्तःकरण पर भी निर्भर मत रहो। साधु और महात्मा, पुरोहित और राजनीतिज्ञ, माता पिता और सम्बन्धी, तथा मित्र और साथी भी यदि आपके अन्तःकरण के निर्णय की निन्दा करें तो आपको अपने अन्तःकरण का ही अनुगमन करना चाहिये, न कि दूसरों के अन्तःकरण का। दूसरों के अन्तःकरण आपके व्यक्तित्व में नहीं हैं। वह आपसे बाहर है और इसीलिये आपके लिये विदेशी है। किन्तु आपका मंत्री आपके अन्दर है, और वह आपके हृदय के समान सदा आपके साथ ही रहेगा। अतएव यदि आपके पुरोहित और राजनीतिज्ञ, माता पिता और सम्बन्धी आपसे अपने प्रसन्न करने और अपनी आज्ञा पालन करने के लिये आपके अन्तःकरण के प्रति आपको झूठा करना चाहें, तो आपको उन्हें सदा यह उत्तर दे देना चाहिये, "मैं आप नहीं हूँ, आप मैं नहीं हो। जिस प्रकार आपका अन्तःकरण आपका है, उसी प्रकार मेरा अन्तःकरण निर्बाधरूप से बिना किसी शर्त के मेरा है। जिस प्रकार मैं आपके वस्त्र नहीं पहिन सकता, अथवा आपके सिर दर्द को स्वयं नहीं ले सकता, उसी प्रकार मैं आपके उस अन्तःकरण का अनुगमन नहीं कर सकता, जिसके विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं आपके आदेश पर अपने व्यक्तित्व के एक भाग को क्यों तोड़ फोड़ कर नष्ट करूँ। यदि मैं अपने अन्तःकरण का इस समय उल्लंघन करूंगा तो यह मुझे शांति से नहीं सोने देगा। क्या उस समय आप सबके अन्तःकरण मिलकर मुझे बचा लेंगे? नहीं, वह यहां निश्चय से नहीं होंगे, क्योंकि वह तुम्हारे हैं, मेरे नहीं। इस प्रकार मैं उन आपत्तियों और लज्जा में पड़ जाऊंगा, जो मेरा अन्तःकरण मेरे आज्ञापालन न करने के कारण अपमानित होकर मुझे देगा। "अन्तःकरण के समान मनुष्य को अधिक दुःखी और कोई नहीं बना सकता। दाढ़ का दर्द भी उसकी तुलना में कुछ नहीं है। बेचैन अन्तःकरण मनुष्य की अंतड़ियों में अत्यन्त निर्दय, और प्रतिहिंसाशील कीड़ा होता है। उसका कुतरना खरोंचना और हलका कष्ट उन सब बड़ी बड़ी भारी यातनाओं की अपेक्षा भी असह्य होता है, जो नूरेमबर्ग के अस्त्रागार में रक्खे हुए शस्त्रों से दी जाती है। यदि मैं अन्तःकरण को मारता हूं तो निश्चय से वह स्वयं मरते हुए भी मुझको उसी प्रकार मारेगा जिस प्रकार हैमलेट ने अपने प्रतिद्वंदी चाचा को मार डाला था। आपको एक क्षण के लिये प्रसन्न करने के लिये मैं अपने अन्तःकरण का निःसहाय अपराधी क्यों बनूं? अपने अन्तःकरण को कभी न सोने देने वाला आजीवन शत्रु बनाने की अपेक्षा अपना मित्र बनाने में ही मेरा हित है, और यही मेरी इच्छा है। अतएव आपका, मेरा और हम सबका यह कर्तव्य है कि हम संसार भर के महान् पुरुषों और सम्राटों से भी अधिक अपने अपने अन्तःकरण का आज्ञा पालन करें, और उसकी पुकार को अपनी प्रेमिका की प्रेम भरी पुकार, अथवा माता पिता और मित्रों की मधुर शिक्षा से भी अधिक शीघ्रता और सत्यता से सुनकर उसके अनुसार आचरण करें।"

यदि कोई निर्बल मनुष्य तुम्हारा निरादर करदे, तो उसे क्षमा कर दो। क्षमा करना ही सज्जनों का काम है। हां! बलवान को निश्चय दंड देना चाहिए।

× × ×

जो बुद्धिमानी और धैर्य से काम करता है। उसके साथ सारी उत्तम वस्तुऐं सहानुभूति रखती हैं।

× × ×

तेरा नाम धाम।

(श्री० स्वामी सत्यभक्त जी महाराज, वर्धा)

सभी भाषाऐं तेरे नाम ।
सभी दुनियां है तेरा धाम ॥

नित्य, निरंजन, निराकार, तू प्रभु, ईश्वर, अल्लाह ।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तू ही, तू शाहों का शाह ॥

खुदा है तू ही, तू ही राम ।
सभी भाषाऐं तेरे नाम ॥

महादेव, शिव, शंकर, जिन, तू रब, रहीम रहमान ।
गौड, यहोवा, परम पिता तू, अहुरमज्द भगवान ॥

सिद्ध, अरहंत, बुद्ध, निष्काम ।
सभी भाषाऐं तेरे नाम ॥

सेतुबन्ध, जेरूसलेम, काशी, मक्का, गिरनार ।
सारनाथ, सम्मेद शिखर में, तेरा ही विस्तार ॥

सिन्धु. गिरि, नगर, नदी, बन, ग्राम ।
सभी दुनियां है तेरा धाम ॥

मंदिर, मसजिद, चर्च, जिनालय, सब धर्मालय एक ।
सब में तेरी ही पूजा है, तेरे रूप अनेक ॥

सभी को बन्दन, नमन, सलाम ।
सभी दुनियां है तेरा धाम ॥

मंदिर में पूजा को जाऊँ, मसजिद पढ़ूँ नमाज ।
गिरजा की प्रेयर में देखूँ, मैं तेरा ही साज ॥

एक हो जांय सलाम, प्रणाम ।
सभी भाषाऐं तेरे नाम ॥